❐ डॉ महेन्द्र भानावत

लोक माध्यम : जनशिक्षण और चुनौतियाँ

भारत परम्पराओं का देश है और यहां की परम्पराएं मनुष्य के विवेक के उद्‌भव अथवा सभ्यता के आदिकाल से जुड़ी हुई हैं। यहां के समाज की पहचान आज भी परम्पराधर्मी समाज के रूप में है। लोक ने जिसे अपनी परिपाटी कहा, शास्त्रों ने उसे अपने विशिष्ट सम्प्रदायों के साथ जोड़ते हुए मर्यादा की संज्ञा से अभिहित किया।

लोक परम्परा के संवाहक के रूप में लोक की ही पारम्परिक विधियां रही हैं जिन्हें लोक माध्यमों के रूप में देखा जा सकता है। आज लोक माध्यम चाहे जिस नवीकृत रूप में हमारे सामने हो लेकिन पारम्परिक लोक माध्यम उनके मूलाधार रहे हैं। लोक जीवन इन माध्यमों से साम्प्रदायिक सम्पर्क ही नहीं, सामुदायिक संवाद और सामुदायिक सह-शिक्षण भी प्राप्त करता है।

लोक ने इन माध्यमों को अनुरंजनपरक आवरण देकर उन्हें चिरस्थायी बना दिया है। यद्यपि आज ये माध्यम आधुनिकता का संकट झेल रहे हैं लेकिन देहात में अब भी अपनी विरासत को महत्त्ववान बनाये हुए हैं। देहातवासी आज की उपग्रहीय संचार और सम्प्रेषण प्रणाली से अनभिज्ञ हैं। राजधानियों में बैठकर सरकार और गैर सरकारी उच्च संस्थाओं के लिए परियोजनाएं तैयार करते समय उच्च पदस्थ अधिकारी सर्व सामान्य तक अपनी बात पहुंचाने के जो स्पप्न संजोते हैं वे सर्वप्रथम पारम्परिक लोकमाध्यमों पर ही दृष्टि निक्षेप करते हैं, क्योंकि शहरी और अभिजात्य अथवा मध्यवर्गीय परिवारों तक तो आधुनिक माध्यमों से बात पहुंच जाती है किन्तु आधारभूत सुविधाओं के अभाव में जीवन जीने वाले लोगों तक अपनी बात पहुंचाने के लिए हर क्षेत्र के अपने अपने आंचलिक लोक माध्यमों का सहारा लेना पड़ता है।

लोक माध्यमों का वर्गीकरण

यूं तो पहले के हर क्षेत्र में अपने अपने लोक माध्यम है जिनके साथ जहां आंचलिक परम्परा जुड़ी होती है वहीं आंचलिक भाषा, अंचल जन्य उत्पादों से सजे मढ़े वाद्य होते हैं और फिर वे उस अंचल के लोक जीवन की अपनी पसन्द भी होते हैं तथापि उनका मूल स्वरूप या मूल लक्ष्य एक ही होता है। लक्ष्य और उद्देश्य के अनुसार पारम्परिक लोकमाध्यमों के तीन स्वरूप है –

१) सूचनात्मक
२) शिक्षात्मक
३) अनुरंजनात्मक

लोक माध्यमों के प्रत्येक रूपानुरूप के साथ चाहे वे रामलीला हो, रासलीला हो, माच, तमाशा, गवरी, चविड्डनाटकम्, भवाई, जात्रा, ख्याल, यक्षगान, कठपुतली, भगत, तेरुकुत्तु, रमखेलिया, गोंधल, भागवतमेल, विदेशिया, मुटियाट्टम, करियाला, अंकिया, नौटंकी, कुरवंजि, स्वांग स्वदा भांडपथर हो अथवा लोक माध्यमों का और कोई रूप हो, उनके साथ सूचना शिक्षा और अनुरंजन उद्देश्यों का निहितार्थ व्याप्त मिलता है।

ये पारम्परिक लोकमाध्यम एक प्रकार से किसी अंचल की रसवंती कलाओं का माधुर्य लिए होते हैं। ये कहीं समूह और समुन्नत मिलते हैं तो कहीं हास्यभाव भी इनमें देखा जाता है। ये माध्यम लोक की संजीवनी हैं। कई बार लोक की यह धरोहर लोक को पुनर्जीवित करती है तो कई बार लोक इन्हें श्रीहीन होने से बचाता है।

लोक के ये माध्यम कहीं आल्हादक होते हैं तो कहीं अनाल्हादक भी किन्तु ये शास्त्रीय अनुष्ठातिक जटिल चक्रों से अलग-अलग अपनी लोक पगडण्डी पर ही अनवरत नजर आते हैं। इन माध्यमों की कुछ विशेषताएं भी हैं –

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१) ये लोकभाषा पर आधारित होते हैं।
२) लोक की अपनी समझ और स्तर के समानान्तर चलते हैं।
३) लोकोक्तियों के सहारे ये अपना विकास करते हैं और कई बार सूत्र शैली में भी अपनी यात्रा करते हैं।
४) लोग संग्रह या लोकराधना इनका प्राणिक आधारित हैं।

भारत के प्रमुख पारम्परिक लोग माध्यम चाहे वे अभिनेय, प्रदर्शनात्मक या गेय अथवा कथनात्मक हों, मुख्य रूप से निम्न हैं –

१) लोककथा
२) लोकनाट्य
३) लोकनृत्य
४) लोकगीत

लोककथा

लोककथा वह है जो परम्परा से चली आई है। वह तथ्यात्मक भी हो सकती है और कथ्यात्मक भी। यूं तो आदिम युग से मानव ने अपनी अनुभूतियों को कथा के रूप में अथवा रूपक बांधकर समझाने का प्रयास किया है। शास्त्रों में ऐसी कथाओं के कई रूपक मिलते भी हैं किन्तु शास्त्रों में भी बारम्बार लोक की महिमा कर अपने से अधिक महत्त्व लोक को दिया है और वहां श्रुत परम्परा अथवा पुरोवाक्य के रूप में इतिहास पुराण की युक्ति का मिलना लोककथा परम्परा की समृद्धि को ही दर्शाता है। इस प्रकार कथाभिव्यक्ति तीन रूपों में नजर आती है –

१) कथा रूपकात्मक
२) पौराणिक
३) लोककथात्मक अथवा लोककंठ पर जीवंतएतिह्य।

भारत में लोककथाएं मुख्य रूप से धार्मिक विकास, व्रत अनुष्ठान, प्रणबद्धता और भय और कौतुक के साथ-साथ रहस्य रोमांच की स्मरणीयता के साथ रसावयवों को लेकर काल के प्रवाह में जीवंत रही हैं। ये ही कथाएं पारम्परिक मिथक, अवदान, चरित्र वर्णन, संस्कारारम्भ, पेड़ प्रकृति वीराख्यान आदि के रूप में भी अपना आकार दर्शाती हैं।

यहां पारम्परिक कथाकार रहे हैं जिन्होंने अपनी निराली परम्परा को जीवन दिया है। राजस्थान में कथक्कड़ों या बातपोशी की परम्परा देखने को मिलती है। यहां राणीगंगा, राव, भाट, चारण सहित रावल, मोतीसर, बड़वा, ढादी, नगारची, सरगड़ा, वीरम आदि समुदायों में जजमानों को कहानी द्वारा रिझाकर उनसे यथेष्ट नेग प्राप्त करने की परम्परा रही है। ये कहानियां कौतुक अभिवर्धन करने वाली तथा इतनी सजीव और जानदार होती हैं कि रसिक को सदैव अधीर बनाये रखती हैं।

यहां कथा को केणी, वार्ता, बात आदि भी कहा जाता है। यहां कथाओं के कहने के चार रूप देखने को मिलते हैं –

१) कथास्थल
२) कथावाचन
३) कथा गायक•
४) कथा मर्तन।

कथाओं के साथ हुंकारे की भी अपनी महिमा है। लोक माध्यमों में हूंकारा अथवा सजीवता की सहमति वह रूप हैं जो तत्क़ाल सम्प्रेषणीयता की प्रतिक्रिया और कथ्य-तथ्य की पुष्टि का प्रतीक हैं। यह किसी भी आधुनिक माध्यमों में संभव नहीं हैं फिर हूंकारे की ये परम्पराएं इतनी सजीव और जीवन से नैकट्य लिए होती हैं कि उनमें तात्कालिक समझ और स्वीकारोक्ति प्रस्तोताओं के लिए पृष्ठपोषण का कार्य भी करती हैं।

लोकथाओं के साथ ही लोकगाथाओं का भी अपना महत्त्व है जो एक प्रकार से लोक का प्रबन्ध काव्य है। इनमें भी लोकमानसीय प्रवृत्तियां, लोक के आदर्श का निरूपण स्वाभाविक प्रवाह तो होता ही है साथ ही साथ चरित्र नायक की जीवन कथा, गेयता में परम्परित होती हैं। ये एक प्रकार से जातीय संस्कृति का अनुभव चित्र प्रस्तुत करती हैं। पवाड़ा भी इसी का एक रूप है।

लोकनाट्य

लोकजीवन में जन्म लेकर लोक को शिक्षित-प्रशिक्षित करने, लोकोद्वार अथवा लोक के लिए आदर्शपरक कार्य करने वाले नायकों के चरित्र का कथात्मक चित्रण तो होता ही है, उसका मंचन भी होता आया है। लोक की यह विशिष्ट थाती है कि उसमें पौराणिक पात्रों से लेकर विभिन्न युगों में जन्म लेकर अपने चरित्रों से अपने श्रेष्ठ उपलब्धिमूलक आदर्शपरक कार्यों से अपनी अमिट छाप कायम करनेवाले चरित्रों की नाट्यपत्र प्रस्तुतियां होती आई हैं। लोक जीवन उन्हें अपने ढंग से मंचित करता है। लोक का अपना मंच है लोक के अपने ही कलाकार उसको मंचित करते हैं। इन लोकनाट्यों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि दर्शकों में से ही कई बार पात्र उभरकर आते हैं और अपने अनुभव को दर्शा जाते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ये लोकनाट्य सर्वसाधारण के जीवन से अपना सम्बन्ध रखते हैं और मनोरंजन के साथ ही जनशिक्षण का कार्य भी करते हैं। लोक के नाटकों की यह सबसे बड़ी विशेषता है कि वे दुर्गुणों पर सद्गुणों की विजय की अभिव्यक्ति होते हैं और प्राय: स्थापन इसी फलिर्ता के साथ होता है।

लोकनाटकों की भी अपनी लोकभाषा है। इनमें रूढियां, लोकाचार, परिपाटियां, कथा-आख्यान के साथ-साथ वार्ता और विश्वास भी संवाद रूप में उपस्थित होते हैं। लोक के नाटकों की यह भी एक विशिष्टता है कि उनमें बनाव और श्रृंगार के मुकाबले वागाभिव्यक्ति की वरीयता हासिल होती है। लोकनाट्यों के कलाकार वाग्विदग्धता तथा तात्कालिक संवाद सर्जन एवं बाग्स्खलन में दक्ष होते हैं और यह भी अति वैशिष्ट्य है कि वे कहीं प्रशिक्षण प्राप्त किये नहीं होते हैं। आज के नाट्यकर्मी जहां एक-एक संवाद को रटने अथवा डबिंग का सहारा लेते हैं, वहीं लोकजीवन के कलाकार स्वयंमेव सिद्ध होते हैं।

राजस्थान में लोकनाट्यों के मूलत: दो रूप होते हैं –

१) लघु प्रहसन, जिसमें रम्मत, भवाई, रावल, रासधारी, हेला, स्वांग, महरण तथा बहुरूपियों के संवादी ख्याल लिए जा सकते हैं।

२) गीतिनाट्य, जिसमें वैवाहिक अवसरों पर किये जाने वाले टूटियां के ख्याल, गवरी के गीताधारित खेल, माच के खेल व अन्य ख्याल शामिल हैं।

यहां तुर्राकलंगी के ख्याल, कुचामणी ख्याल, शेखावाटी के ख्याल, मेवाड़ी ख्याल, नौटंकी के ख्याल, कलाबक्षी ख्याल, किशनगढ़ी ख्याल, चिड़ावी ख्याल, कठपुतली ख्याल, हत्थरसी ख्याल, गंधर्वों के ख्याल, नागौरी ख्याल, कड़ा ख्याल एवं झाड़शाही ख्यालों की अपनी विशिष्ट विरासत रही है।

इसी प्रकार यहां लीलाओं की भी अपनी सुदीर्घ परम्परा देखने को मिलती है। सम्भवत: ये लीलाएं धार्मिक अथवा भक्ति आन्दोलनों की प्रेरणाएं लिए रही हैं क्योंकि इनके मूल में देव अथवा भगवन्त लीलाएं मुख्य हैं। यहां – रामलीला, रासलीला, समकालिक लीला, नरसिंह लीला, समया, रासधारी, गरासियों की गौर लीला, भीलों की शिवलीला अथवा गवरी आदि।

लोकनृत्य

लोकनृत्य लोक माध्यमों की दृष्टि से सबसे महत्त्वपूर्ण है। ये लोक जीवन के उल्लास की सशक्त अभिव्यक्ति है और सम्प्रेषण माध्यम के रूप में मानव शरीर के उपयोग की प्राचीनतम कला भी। इनकी प्रस्तुति में सामाजिक जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाएं अथवा महत्त्वपूर्ण अभिव्यक्तियां उजागर होती हैं। भावनाओं की अभिव्यक्ति और भावोद्रेक के लिए मानव जीवन को नृत्य एक नैसर्गिक माध्यम है। यह किसी एक व्यक्ति की उपज नहीं बल्कि समष्टि की संरचना है। सदियों पूर्व मनुष्य अपने आनन्द मंगल के कारण अंग भंगिमाओं का जो अनियोजित प्रदर्शन करता रहा, वही धीरे-धीरे आयोजन नियोजन के साथ लोकनृत्यों के रूप में सामने आया।

लोक नृत्यों के कई रूप हैं –

१) स्वान्तसुखाय लोकनृत्य
२) आनुष्ठानिक लोकनृत्य
३) श्रम साध्य लोकनृत्य
४) सामाजिक लोकनृत्य
५) मनोरंजनात्मक लोकनृत्य

इन रूपों के बावजूद लोकनृत्यों के लिए यह कहा जा सकता है कि उनमें लोकजीवन की परम्परा, उसके संस्कार तथा जनता का आत्मिक विश्वास निहित होता है जिसे बाद में आध्यात्मिक विश्वास का नाम दे दिया गया। ये लोकनृत्य सामूहिक अभिव्यक्ति होते हैं और सर्वगम्य तथा सर्व सुलभता योग्य सहजता लिए होते हैं। एक प्रकार से ये लोकनृत्य सामूहिक अनुरंजन के साथ-साथ लोकशिक्षण के भी सशक्त माध्यम हैं।

राजस्थान में घूमर, घाटाबनाड़ा, पणिहारी, तेराताली, गणगौर, मोरबंद, कांगसिया जैसे नृत्य गुजरात के भवाई, डांडिया, गरबारास, कश्मीर के रुफ, वाट्टल, घूमाल, बांड, पाथेर व मुखौटा नृत्य, पंजाब के भांगड़ा, गिद्दा, लूद्दी झूमर और चीना, हरियाणा के डंडा, छठी, हिमाचल प्रदेश के नाटी, घोड़ायी, डांगी, नाट, फुरेही व फराटी, किन्नौर के बोयांग्चू, गद्दी, उत्तरप्रदेश के चांचरी, रसिया, चरकुला, रास, रासक, झूला, फेरा, डांगरिया आसन, रणासो, उड़ीसा के डंडानाट, लागुड़ा, केलाकेलूनी, घंटा पटुआ, छाऊ व घूमरा, पश्चिमी बंगाल के गंभीरा, रायबेश, ढाली, जात्रा, पालागान, असम के बीहू, दुलिया, भंवरिया व खुलिया, मणिपुर के लाइहारोबा, माइबा, रास, संकीर्तन च चौलम जैसे कई नृत्य यह बताते हैं कि लोक जीवन इन नृत्यों को एक सशक्त माध्यम के रूप में रंजन और शिक्षण का आधार बनाये हुए हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म के धर्मग्रन्थ **Old Testament** में पैगम्बर मोजेज ने जिन दस धर्मादेशों का उल्लेख किया है, उनमें छठा धर्मादेश है– **'Thou shall not kill'** अर्थात् 'तुम किसी को मत मारो'। वस्तुत: यहूदी धर्म में न केवल हिंसा करने का निषेध किया गया, अपितु प्रेम, सेवा और परोपकार जैसे अहिंसा के विधायक पक्षों पर भी बल दिया गया है।

यहूदी धर्म के पश्चात् ईसाई धर्म का क्रम आता है। इस धर्म के प्रस्तोता हज़रत ईसा माने जाते हैं। यह सत्य है कि ईसामसीह ने ओल्ड टेस्टामेन्ट में वर्णित दस धर्मादेशों को स्वीकार किया, किन्तु मात्र इतना ही नहीं, उनकी व्याख्या में उन्होंने अहिंसा की अवधारणा को अधिक व्यापक बनाया है। वे कहते हैं– ''पहले ऐसा कहा गया है कि किसी की हत्या मत करो..... लेकिन मैं कहता हूँ कि बिना किसी कारण अपने भाई से नाराज मत होओ।'' इससे भी एक कदम और आगे बढ़कर वे कहते हैं कि ''यदि कोई तुम्हारे एक गाल पर तमाचा मार देता है, तो दूसरा गाल भी उसके सामने कर दो।'' पुराना धर्मादेश कहता है– ''पड़ोसी से प्यार करो और शत्रु से घृणा करो'', मैं तुमसे कहता हूँ कि ''शत्रु से भी प्यार करो। जो तुम्हें शाप दे उसे वरदान दो, जो तुम्हारा बुरा करे, उसका भला करो।'' ईसा के इन कथनों से यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने यहूदी धर्म की अपेक्षा भी अहिंसा पर अधिक बल दिया है और उसके निषेधात्मक पक्ष कि 'हत्या मत करो' की अपेक्षा 'करुणा, प्रेम, सेवा' आदि विधायक पक्षों को अधिक महत्व दिया है।

इस्लाम धर्म में कुरान के प्रारम्भ में ईश्वर (खुदा) के गुणों का उल्लेख करते हुए उसे उदार और दयावान (रहमानुर्रहीम) कहा गया है। उसमें बिना किसी उचित कारण के किसी को मारने का निषेध किया गया है और जो ऐसा करता है वह ईश्वरीय नियम के अनुसार प्राणदण्ड का भागी बनता है। मात्र यही नहीं, उसमें पशुओं को कम भोजन देना, उन पर क्षमता से अधिक बोझ लादना, सवारी करना आदि का भी निषेध किया गया है, यहाँ तक कि हरे पेड़ों के काटने की भी सख्त मनाही की गई है। इससे इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि इस्लाम धर्म में भी अहिंसा की भावना को स्थान मिला है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राय: विश्व के सभी प्रमुख धर्मों में अहिंसा की अवधारणा उपस्थित है। ■

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org